International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

चित्त का स्वरूप : एक विवेचनात्मक अध्ययन

रोशन कुमार भारती,[1] एम.फिल.(योग)

डॉ.उपेन्द्र बाबू खत्री,[2] सहायक प्रध्यापक (योग)

डॉ.अखिलेश सिंह,[3] सहायक प्रध्यापक (आयुर्वेद)

साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय बारला, रायसेन (म.प्र)

सारांश–

भारतीय नव दर्शनों में वर्णित नास्तिक और आस्तिक दर्शन में योगदर्शन एवं बौद्धदर्शन प्रमुख्य है, जिसमें चित्त विषय की व्याख्या मिलती है। जहां योग दर्शन कर्म संस्कारों का संचय स्थल को 'चित्त' की संज्ञा देता है, और इसमें उत्पन्न चित्तवृत्ति निरोध को योग का लक्ष्य कहा गया है। पतंजलि योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों के साथ चित्त विच्छेप, सहभुव अंग के साथ चित्त प्रसन्न करने के उपाय क्रियायोग, अष्टांग योग के बारे में भी बताया गया है। वहीं बौद्ध दर्शन मन को चित्त के रूप में स्वीकार करता है। चित्त वह है जिसके माध्यम से कर्मों का क्रियात्मक रूप से संचालन और चेतना का विस्तार जहाँ निरंतर बना रहे। बौद्ध दर्शन के प्रमुख त्रिपिटकों में अभिधम्म पिटक में चित्त के विषय में चर्चा हुई है। उसमें चित्त को कर्म व चेतना के साथ कार्य करने वाला बताया गया है। दोनों ही दर्शनों में चित्त का अध्ययन इस रूप से किया गया है कि जहां एक ओर चित्त को अन्तकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार) रूप में माना गया है। वहीं बौद्ध दर्शन में चित्त की संज्ञा अवस्थाओं के रूप में मानी गई है। चित्त (मन) की अवस्थाओं के अनुरूप और उसमें उत्पन्न होने वाली विचारों की निवृर्त्ति (निरोध) हेतु अष्टांग मार्ग एवं त्रिरत्न आदि विषयों के बारे में बताया गया हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य विभिन्न ग्रन्थों में चित्त के स्वरूप का अध्ययन करना है। चित्त का विभिन्न ग्रन्थों के परिपेक्ष्य सन्दर्भ में अध्ययन करना है। साथ ही प्रस्तुत शोध पत्र में चित्त की विभिन्न समप्रत्ययों एवं उससे सम्बन्धित आयामों का वर्णन किया गया है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

मुख्य शब्दः– चित्त, चित्त का अर्थ, चित्त का स्वरूप, विभिन्न ग्रन्थों में चित्त।

प्रस्तावना–

चित्त बहुत ही व्यापक विषय हैं। जिसका अर्थ दर्शन एवं विभिन्न ग्रंथों में देखने को मिलता हैं। कहीं चित्त को बुध्दि के रूप में माना जाता हैं तो कहीं चेतना या फिर चैतन्यता के रूप में जाना जाता हैं। वास्तव में चित्त का स्वरुप एक ही हैं जो कि स्वयं चित्त हैं। चित्त का सामान्य अर्थ देखना होता है। चित्त प्रकृति एवं पुरुष के संयोग के पश्चात् उत्पन्न होने वाला प्रथम व्यक्त तत्व है। चित्त चेतना का वह पहलू है, जिसे दृष्टा कहा जाता है। इससे मन, बुद्धि और अहंकार उत्पन्न होते है। सांख्य दर्शन के विशेष रूप में बताऐ गए गुण सत्व, रज और तम ये तीनों ही चित्त में रहते हैं और इनके द्वारा ही चित्त में हलचल उत्तपन्न होती है। इन तीनों गुणों में समानता बनाए रखना तथा साथ में चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाना और व्यक्ति का दृष्टा भाव में चित्त की एकाग्रता होना उसका स्वयं के प्रति अपने स्वरुप में अवस्थित हो जाता है यहीं योग का लक्ष्य है।

चित्त शब्द का अर्थ विभिन्नमतानुसार–

चित्त एक विविधानात्मक शब्द है इसको विभिन्न रूपों में जाना जाता है। सांख्य दर्शन में चित्त को मन, बुद्धि और अहंकार अंतःकरण के रूप में माना गया है। अतः इस में चित्त को त्रिगुणात्मक माना हैं, जिसमें सत्व गुण रजगुण और तमगुण का समावेश रहता है और इन्हीं गुणों के कारण ही चित्त में कार्य करने की प्रवृति होती हैं। सांख्य के अनुसार चित्त प्रकृति की

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

पहली विकृति है और चित्त (बुद्धि) का दूसरा रूप है। सांख्य दर्शन के दो प्रमुख ग्रंथ हैं पहला सांख्य कारिका दूसरा तत्व मीमांसा।

सांख्य कारिका एक मुख्य प्रकरण ग्रंथ है जिसमें दो प्रमुख तत्वों का समावेश है। जिसमें एक तत्व जड़तत्त्व है और दूसरा तत्व चित्त हैं। जड तत्व जगत का उपादान कारण हैं। और चित् तत्व पुरुष शब्द से अभिहित होता हैं। 'सांख्यभिमत में दो तत्व जड़ तत्व और चित् तत्व अपने रूढ़ अभिधानों से अभिहित होकर प्रकृति और पुरुष कहे जाते हैं।'[1] सांख्य कारिका के अनुसार 'मूल प्रकृति वह जो अव्यक्त (अदृश्य) है, जिसका न कोई मूल कारण हैं और न ही कोई अविकृति है। महतत्व इसकी पहली विकृति हैं, और उसके साथ उत्तपन्न होने वाले सात तत्व विकृत हैं। सोलह पदार्थों का समूह विकृति रहित हैं। पुरुष न तो प्रकृति है और न ही वह विकृति हैं। वह स्वतन्त्र सत्ता है।'[2] 'सांख्य मुख्यतः चित्त तत्व को पुरूष शब्द से अभिहित करता हैं। 'सांख्य' द्वारा माने जाने वाले चित् या चेतन तत्व के लिए जहां अन्य दर्शनों ने आत्मा एवं पुरुष आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग हैं।'[3] सांख्य ने मुख्यतः पुरुष शब्द का प्रयोग किया है और सांख्याभिमत चित् तत्व का पुरूष शब्द रूढ़ हो गया है। इसी के आधार पर ही सांख्य दर्शन में वर्णित तत्वों के आधार पर जड़ तत्त्व और चित् तत्व अपने रूढ़ अभिधानों से अभिहित होकर प्रकृति और पुरुष कहे जाते हैं। 'वर्तमान काल के पदार्थों को विषय बनाते हैं और भीतरी करण या अन्तःकरण त्रैकालिक होते हैं। अर्थात्– भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में पदार्थों को विषय बनाते हैं।'[4] सांख्य में तीन प्रकार के करण अर्थात्– 'बुध्दि, अहंकार और मन ये अन्तःकरण द्वार या साधन वाले अर्थात्–प्रधान हैं और अवशिष्ट करण अर्थात्– बाह्य इन्द्रियां द्वार या साधन मात्र हैं।'[5]

स्वामी विवेकान्द के अनुसार– चित्त की अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करने हेतु निरंतर प्रयास करता रहता है। किन्तु इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों के सम्पर्क में आने के कारण चित्त

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अपने यथार्थ स्वरूप से रहित हो जता है। जब तक चित्त में विषयों के प्रति अशक्ति रहती है तब तक वह शुद्ध चौतन्य अवस्था में नहीं रह पाता है।

विवेकचूड़ामणि में के अनुसार– 'चित्त का स्वरुप विवेक चूड़ामणि में चित्त के विषय में बताया गया है कि यह एक अन्तकरण का एक अंग है। इसमें मन बुद्धि चित्त और अहंकार अंतःकरण के रूप में विद्यमान रहते हैं।'[6]

'चित्त चैतन्य सत्ता जिसके ज्ञान के लिए किसी दूसरे ज्ञान कराने वाले तत्व की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं ही प्रकाशित है। चित्त के माध्यम से ही प्रत्यक्ष ज्ञान प्रज्ञा आत्मा तथा ब्रम्ह का ज्ञान होता हैं।'[7] चित्त हमारी आंतरिक शक्ति वृत्ति के द्वारा चित्त की वर्तमानता का अनुभव होता है और वृत्ति के बिना चित्त लीन होता जाता है। चित्त प्रत्यय और संस्कार से युक्त वस्तु है। सत्व, रज और तम इन तीन गुणों का सबसे पहला विषम परिवर्तन परिणाम चित्त है। अतः इसे चित्त सत्व भी कहते हैं। अन्तकरण में शामिल होने वाले तत्वों में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये अंतःकरण तत्व आते हैं।

योगशास्त्र में बुध्दि को चित्त में सम्मिलित माना जाता हैं। चित्त में ही सुख दुःख लाभ क्रोध और मोह आदि उत्तपन्न होते हैं। और इन्हीं के कारण ही स्वरुप त्रिगुण में भी परिवर्तन होते हैं। 'चित्त के विषय में बताया गया हैं कि चित्त का स्वरुप विभु है। वह सभी जगह विद्यमान हो सकता है, स्थिर नहीं है।'[8]

अद्वैत वेदांत के मतानुसार– 'जो आन्तरिक हैं अर्थात्– चित्त परिच्छेद्य है। जिसका चित्त काल के सिवा कोई और काल परिच्छेद्यक न हो उन्हें चित्त काल कहते हैं।'[9] 'स्वाप्रादिज्ञान रुप चेतना के प्रति द्वार स्वरुप होने के कारण चित्त चेतोमुख हैं अथवा स्वाप्रापि की प्राप्ति के लिए ज्ञान स्वरुप चित्त ही इसका द्वार हैं। यह चेतोमुख हैं।'[10] 'चित्त से उत्पन्न होने वाले और

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

चित्त से प्रतिष्ठित अर्थात्– चित्त में ही रहने वालो को चित्त मय कहा गया हैं।'[11] 'चित्त का रोगादि से दुःखी होना ही जूति कहलाता है।'[12]

वेदांत दर्शन के अनुसार– 'चित्त को अन्तकरण के रूप में माना हैं'[13] जिसमें चित्त के विषय में कहा गया हैं, कि चित्त वह हैं जिसमे निरंतर ही प्रवाहित होने वाले विचारों का समावेश होता रहता हैं और चित्त में ही साथ रहने वाले अन्य अंगमन बुद्धि और अहंकार भी चित्त के समरुप ही कार्य करते हैं।

पतंजलि योगसूत्र में चित्त का स्वरुप –

भारतीय दर्शन में षड्दर्शन में वर्णित योगदर्शन एक मुख्य दर्शन हैं। इस दर्शन का मुख्य आधार पतंजलि योगसूत्र है। यह दर्शन सांख्य दर्शन का दूसरा रूप आधार है। सांख्य दर्शन के सैध्दांतिक पक्ष साथ–साथ उसके को मानता है। वहीं दूसरी ओर योगदर्शन सांख्य दर्शन के विशेष रूप में उसके सैध्दांतिक तत्वों को मानते हुए योगदर्शन व्यावहारिक पक्ष को मानता है। पतंजलि योगसूत्र सांख्य के पच्चीस तत्वों की सत्ता को स्वीकार करने के साथ–साथ एक मुख्य तत्व ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार किया हैं। पतंजलि योगसूत्र योग दर्शन का एक आधार एवं एक विशेष रूप से वर्णित सूत्रात्मक ग्रंथ है। इस सूत्रात्मक ग्रंथ में वर्णित 195 सूत्रों का वर्गीकरण किया गया है। जिसमें पहले पाद में वर्णित समाधि पाद में 51 सूत्र हैं। द्वितीय पाद में 55 सूत्र तृतीय पाद में 55 सूत्र और चतुर्थ पाद में 34 सूत्र हैं। 'पतंजलि योगसूत्र में योग मार्ग पर बढ़ने के लिए योग साधकों के लिए तीन प्रकार के योग अभ्यास बताए गए हैं जो कि तीन प्रकार के कोटी योग साधकों के लिए हैं।' प्रथम कोटी योग साधक के लिए उपाय के रूप में अभ्यास और वैराग्य की साधना बतायी गई हैं। मध्यम कोटी साधक के लिए क्रियायोग और प्रथम अवस्था में परिणित हो रहे योग साधक के लिए अष्टांग

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

योग कि बात कही गई है।[14] पतंजलि योगसूत्र की शुरुआत समाधि से होती है और कैवल्य प्राप्ति के पश्चात खत्म होती है।

पतंजलि योगसूत्र के अनुसार 'चित्त वह है, जहां वृत्तियां उत्तपन्न होती हैं, और संस्कारों का संचय होता है। अविद्या के कारण ही चित्त में वृत्ति उत्तपन्न होने लगती हैं। और इस वृत्ति को दूर करने के लिए योग सूत्र में कहा गया हैं कि चित्त की शुद्धिता के साथ–साथ उसमें उत्पन्न होने वाली वृत्तियों को दूर करने के योग मुख्य साधन है।'[15] और जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता हैं उसमें किसी भी प्रकार का कोई भी संस्कार शेष नहीं रहता है, 'तब योगी साधक अपने स्वरुप में अवस्थित होने लगता हैं।'[16] "चित्त वह है जिसमें सत्त्व, रज तथा तम गुण रहते है और इन्हीं गुणों के कारण चित्त की क्रिया शीलता होती है। इन तीनों गुणों के कारण चित्त तीन रूपों से उभरता है– प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील तथा स्थितिशील।"[17]
पतंजलि योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों से सर्वप्रथम चित्त की पाँच अवस्थाओं का वर्णन मिलता हैं। योगसूत्र पर आधारित व्यास भाष्य में चित्त की पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं जिन्हें चित्त की पाँच भूमियों के नाम से भी जाना जाता है। इन्हीं अवस्थाओं में चित्त की विभिन्न रूप क्रिया के आधार पर कार्यरत् होता है, ये पाँच अवस्थायें ही चित्त की प्रवृत्ति दिशा निर्धारित करती हैं। 'व्यासभाष्य में वर्णित चित्त की पाँच भूमियां निम्न प्रकार हैं, क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध– चित्त की ये पाँच भूमियाँ हैं।'[18] 'चित्त की इन पाँचों भूमियों में रहने के कारण चित्त स्थिर नहीं है वह किसी एक गुण के प्रति आश्रित नहीं रहता इसी कारण चित्त को सर्वाभौमधर्म कहा जाता है।'[19] समाधि शब्द योग से अधिक व्यापक हैं। वह सभी भूमियों में रहने वाला धर्म है, इसीलिए उसे चित्त का सार्वभौम धर्म कहते हैं। 'चित्तस्य सार्वभौमः धर्मः चित्त का सार्वभौम धर्म हैं। सार्वभौम का अर्थ है, सभी भूमियों में रहने वाला।'[20] अर्थात्– चित्तवृत्तिनिरोध– चित्तस्य वृत्तयः इति चित्तवृत्तयः, तासां निरोध इति तथोक्त :। चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहा गया है। चित्त जिस–जिस स्थिति या रूप में रहता है अर्थात्– परिणित होता रहता है, वे स्थितियाँ

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

चित्त की वृत्तियाँ हैं, क्योंकि चित्त वह है जिसमें विचारों की उत्पन्नता होती है अतः वह भाग जहाँ संस्कारों का संचितिकरण हो रहा है वह चित्त की वृत्ति है और उसको ही वृत्ति कहते है। पतंजलि योग सूत्र में 'प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति'[21] ये पाँच प्रकार की चित्त वृत्तियाँ बताई हैं। 'योगसूत्र में इन वृत्तियों का विभाजन ज्ञान के रूपभेद आधार पर पाँच प्रकारों में किया गया है'[22] चित्त वृत्तियों को दो रुपों में बांटा गया हैं। पहली जो पाँच प्रकार की वृत्तियाँ है, वह क्लिष्ट वृत्ति है, जो योग के मार्ग में बाधंक होती है, दूसरी जो वृत्तियाँ है वह अक्लिष्ट है, और यह साधक रुपी होती हैं। पतंजलि योगसूत्र में 'चित्त में उत्पन्न होने वाली वृत्तियों को शत्रु नहीं मित्र माना है'[23], क्योंकि चित्त ही वहीं अंश है जहाँ मनुष्यों द्वारा किये हुए समस्त कर्म संस्कारों का संचय होता है। चित्त में जिस प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है उसे उसी प्रकार से बाहरी विषय प्रदर्शित दिखाई देते है, इसी सन्दर्भ में पच्चशिखाचार्य के सूत्र में उल्लेख मिलता है कि जब चित्त में संस्कार रूप वृत्तियों का संचय होता है तब पुरुष और चित्त (बुद्धि) दोनों का सामान रूप हो जाता है अतः दोनों का दर्शन एक सामान ही प्रतीत होता है। योगसूत्र में चित्त को चुम्बक के सामान पुरुष के साथ निरंतर जुडा हुआ बताया गया है, इसी सम्बन्ध के माध्यम से पुरुष चित्त में उत्पन्न हुए संस्कारों का ज्ञान होता है उसी के कारण चित्त में जिस–जिस रूप में वृत्तियाँ बनती है वह चित्तिशक्ति रूप में प्रतीत होती है। इस चित्तिशक्ति का स्वरूप बिल्कुल भी परिवर्तन नही होता। चित्त की वृत्तियाँ विषयाकार होती है, उसका रूप प्रतिक्षण बदलता रहता है अतः चित्त की वृत्ति जिस रूप में होती है चित्तिशक्ति भी उसी रूप में परिणत होती है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

बौद्ध दर्शन में चित्त का स्वरुप–

भारतीय दर्शन में वर्णित दर्शनों का एक आधार बौद्ध दर्शन है। बौद्ध दर्शन में भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशनात्मक बाते कहीं गई हैं। 'बौद्ध दर्शन में सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक इन तीन त्रिपिटकों की व्याख्या है। ये त्रिपिटक तीन प्रकार के पेटी के रूप में हैं।'[24] अतः यह पिटक मानवीय मूल्यों के प्रति कल्याण और मनुष्य के विकास के लिए उपदेशों के रूप में मान्यता प्रदान है। त्रिपिटकों में वर्णित सुत्त पिटक और विनय पिटक मनुष्य के जीवन में व्यवस्थापन शांति और समृद्धि के साथ साथ उसके पूर्ण रूप से प्रविष्ट होने वाले परिवर्तन और उसके व्यक्तित्व विकास का कार्य करते हैं, और साथ ही अंतिम पिटक जो कि अभिधम्म पिटक के रूप में बौद्ध दर्शन का मुख्य आधार हैं। इसका वर्णन बौद्ध दर्शन एवं बौद्ध धर्म के विशेष उपदेशों और उनके विचारों को जानने का प्रयास किया गया है। अभिधम्म शब्द का प्रयोग अभि विनय शब्द के साथ साथ क्रमशः धम्म और विनय सम्बंधित गंभीर उपदेश के अर्थ में सुत्त पिटक में भी हुआ है। सम्भवतः इसी आधार पर ही विद्यावान आचार्य बुद्धघोष ने अभिधम्म शब्द का अर्थ उच्चतर धम्म या विशेष धम्म अभिधम्म में अभि शब्द को उन्होंने अतिरिक्त अतिरेक या विशेष का वाचक माना है। वास्तव में अतिशयता या विशेषता धम्म की नहीं हैं। अभिधम्म पिटक में बुध्द मन्तव्यों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया गया हैं। तात्विक और मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से उन्हें गणनावृद्ध किया गया है। अभिधम्म पिटक को उच्चतम धम्म या विशेष धम्म कहा गया है। 'अभिधम्म शब्द का एक अर्थ प्रज्ञा से माना है जिसमें कहा गया है कि प्रज्ञा को ही अभिधम्म कहा गया हैं।' **प्रज्ञाऽमलासानुचराऽभिधर्मः।**[25]

बौद्ध दर्शन के त्रिपिटकों में अभिधम्म पिटक में मुख्य रूप चित्त की व्याख्या मिलती है। इस अभिधम्म पिटक में सात ग्रंथों का अध्ययन मिलता हैं, जो कि प्रकरण ग्रंथ कहलाते हैं। धम्मसङ्गणि, विभङ्ग, धातुकथा, पुग्लपञ्ञति, कथावत्थु, यमक और पठ्ठान। बुद्धघोषाचार्य ने भी अट्ठसालिनी की निदानकथा में वर्णित ग्रंथों के बारे में बताया हैं।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अभिधम्म पिटक का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ धम्मसङ्गणि है। यह बौद्ध धर्म में वार्णित नीतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। इस ग्रन्थ में कुशल, अकुशल और अव्याकृत रूप से शीर्षक में रखकर इन सभी एक सौ बाईस मातिका रूप में विभाजित कर इन विषयों की व्याख्या की है। धम्मसङ्गणि की विषय वस्तु को चार कण्डों में विभक्त किया गया है, जिसमें चितुत्पादकण्ड, रूपकण्ड, निक्खेपकण्ड एवं अत्थुद्वारकण्ड आते है।

1. **चितुत्पादकण्ड**– इस चित्तकण्ड के अन्तर्गत चित्त को चार भागों में विभक्त किया गया है, कामावचर, रुपावचर, अरुपावचर और लोकोक्तर चित्त।
2. **रूपकण्ड**– इसके अन्तर्गत रूप धर्मों की मातिकाओं विभाजन रूप देखने को मिलता है।
3. **निक्खेपकण्ड**– इस भाग में सभी धर्मों के स्कन्ध, आयतन आदि रूपों का संग्रह करके वर्णन किया गया है।
4. **अत्थुद्वारकण्ड**– इसमें बुद्ध के दिए हुए वचनों का सार बतलाया गया है।

'धम्मसङ्गणि' के चारों काण्डो में से चित्त की अवस्थाएँ एवं चित्त के साथ जुड़े हुए चेतसिक और चित्त की विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या प्रथम कण्ड चित्तुप्पाद–कण्ड में हुई है। इस प्रथम कण्ड में चित्त एवं चेतसिक के साथ चित्त की कुशल, अकुशल और अव्याकृत अवस्थाओं की भी व्याख्या हुई है। अभिधम्म–पिटक के 'धम्मसङ्गणि' ग्रन्थ में चित्त के विभिन्न स्वरूपों को बताया गया है। 'धम्मसङ्गणि' के प्रथम भाग में चित्त और चेतसिक दोनों ही रूपों का वर्गीकरण किया गया है ततः पश्चात् अन्य कण्डो में चित्त प्रश्नों एवं उत्तर को बताया गया है। बौद्ध दर्शन में चित्त का अर्थ बड़े व्यापक रूप में लिया गया है। **चित्त का अर्थ है चेतना। भगवान् बुद्ध ने स्वयं कहा है कि "चेतनाह भिक्खवे कम्मं वदामि।" अर्थात् "भिक्षुओं ! चेतना को ही मैं कर्म कहता हूँ।"**[26] 'धम्मसङ्गणि' में चित्त की चार भूमियाँ बताई गई है। चित्त उन्हीं चार अवस्थाओं या भूमियों में अग्रसर रहता है। उस अवस्था चित्त में बहिर्जगत् से आ रहीं चंचलताओं से ऊपर उठकर निर्वाण की ओर अभिमुख होने लगता है। 'धम्मसङ्गणि' में चित्त

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

की चार भूमियाँ है, 'कामावचर–भूमि, रुपावचर–भूमि, अरुपावचर–भूमि एवं लोकोत्तर–भूमि।' अभिधम्मसङ्गहों में भी इस चार भूमियो का वर्णन मिलता है, इन्हीं चार अवस्थाओं में चित्त की क्रियाशील होता है ये अवस्थाएँ है– कामावचर, रुपावचर, अरुपावचर और लोकोक्तर।[27]

अभिधर्म में वर्णित जितने भी अभिधर्मार्थ कहे गए हैं, वे सब परमार्थ रुप से चार ही पदार्थ हैं– चित्त, चेतसिक, रुप तथा निब्बान। इन्हीं चार अभिधर्मार्थ को चित्त की चार अवस्थाओं में विभाजित किया गया है ।

1. कामावचर– जिसमें चित्त में कामनाओं का प्राधान्य रहता है।
2. ☐रुपावचर– योगाभ्यासी के चित्त के लिए रुपावचर शब्द रुढ़ हैं।
3. ☐अरुपावचर– जिन आकासानञ्चायतन आदि आयतनों में रुप का सर्वथा अभाव हो जाता हैं,उनसे सम्प्रयुक्त चित्त अरुपावचर चित्त कहलाता हैं।
4. लोकुत्तर– चार मार्ग चित्त (स्त्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत) और चार फल चित्त (स्त्रोतापत्ति फल प्राप्त चित्त,सकृदागामी फल प्राप्त चित्त,अनागामी फल प्राप्त चित्त और अर्हत फल प्राप्त चित्त) ये आठ प्रकार के चित्त लोकुत्तर चित्त कहलाते हैं।

अभिधम्म पिटक के प्रथम ग्रन्थ 'धम्मसङ्गणि' में चित्त की संख्या (89) प्रकार की बताई गई है। इन संख्या के आधार पर चित्त को चार भूमियों या फिर चार अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है। ये चार अवस्थाएँ है, 1. कामावचर–भूमि– जिसमें चित्त की (54) भूमि रहती है। 2. रुपावचर–भूमि– जिसमें (15) चित्त भूमि रहती है। 3. अरुपावचर–भूमि– इसमें (12) चित्त होते है। 4. लोकोत्तर–भूमि– इसमें चित्त की (8) भूमि रहती है। 'धम्मसङ्गणि' में इन (89) प्रकारों से चित्त की भूमियों या अवस्थाओं का कुशल, अकुशल और अव्याकृत रूप से विभाजन हुआ है।[28] जिसमें (21) चित्त की अवस्थाएँ कुशल से सम्बन्धित है, (12) अकुशल चित्त की अवस्थाएँ

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

है, तथा चित्त की जो (56) अवस्थाएँ है, वह अव्याकृत चित्त की अवस्थाएँ है जिसमें (36)विपाक चित्त और (20) क्रिया चित्त होते है।

'धम्मसङ्गणि' में चित्त की अवस्थाओं का और विश्लेषण किया जाए तो जो कामावचर भूमि है, जिसमें (54) रूपों से चित्त की अवस्थाएँ समाहित हैं उनमें (8) कुशल चित्त, (12) अकुशल चित्त, (34) अव्याकृत चित्त जिसमें (23) विपाक–चित्त और (11) क्रिया–चित्त रहते है। रुपावचर भूमि चित्त की (15) अवस्थाओं में (5) कुशल चित्त, (10) अव्याकृत चित्त है जिसमें (5) विपाक–चित्त और (5) क्रिया–चित्त होते है। रुपावचर चित्त भूमि में अकुशल चित्त समावेश नहीं होता। अरुपावचर भूमि में चित्त की (12) अवस्थाओं में (4) कुशल चित्त, (8) अव्याकृत चित्त है जिसमें (4) विपाक–चित्त और (4) क्रिया–चित्त है। लोकोत्तर भूमि में चित्त की (8) अवस्थाएँ है जिसमें (4) विपाक–चित्त और (4) क्रिया–चित्त होते है। अरुपावचर चित्त भूमि में और लोकोत्तर चित्त भूमि में अकुशल चित्त नहीं होते। (21) कुशल चित्तों की दृष्टिकोण से देखा जाए तो (8) कामावचर–भूमि में चित्त होते है, (5) रुपावचर–भूमि में, (4) अरुपावचर भूमि में और (4) लोकोत्तर भूमि के चित्त होते है। (12) अकुशल चित्त कामावचर भूमि में ही होते है। अन्य भूमियों में ये नहीं होते है। (56) अव्याकृत–भूमि में चित्त (34) रूपों में (23) विपाक–चित्त और (11) क्रिया–चित्त कामावचर–भूमि के होते है। रुपावचर–भूमि में चित्त की (10) अवस्थाओं में (5) विपाक–चित्त और (5) क्रिया–चित्त होते है। अरुपावचर–भूमि की अवस्थाओं में (4) विपाक–चित्त और (4) क्रिया–चित्त होते है। लोकोत्तर भूमि में सिर्फ (4) विपाक–चित्त का समावेश होता है।[29]

विचार–विमर्श–

चित्त शब्द की व्याख्या विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिल जाती है। परन्तु योगदर्शन एवं बौद्ध दर्शन ऐसे प्रमुख ग्रंथ हैं जिसमें चित्त के विषय को विस्तृत रूप से वर्णन किया हैं। इन

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

दोनों ही ग्रन्थों में चित्त की चंचलता उसके विभिन्न विषय के साथ–साथ चित्त में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन के कारण उसके विभिन्न गुणों रुपों का वर्णन इन दोनों ग्रंथों में मिलता है। जहां पतंजलि योग सूत्र में चित्त की विभिन्न दशाओं के साथ चित्त विषय को बताते हैं। वहीं दूसरी ओर बौद्ध धर्म दर्शन में वर्णित त्रिपिटकों में अभिधम्म पिटक में चित्त की एकाग्रता के साथ चित्त के विभिन्न प्रकारों के साथ उसके रुपों की चर्चा इस पिटक में करते हैं। अतः यह दोनों ही ग्रन्थों में चित्त की भूमियों के साथ चित्त की अवस्थाओं एवं उसके प्रकारों के विषय में बताया गया हैं।

उपसंहार–

चित्त बहुत ही व्यापक विषय हैं। इसके विभिन्न प्रकार के रूपों का स्वरुप पतंजलि योग सूत्र में चित्त को सूत्रात्मक रुप से बताया गया हैं, जिसमें चित्त की वृत्तियों के साथ चित्त विक्षेप अन्तराय और उनके सहयोगी सहभुव अवयवों के विषय में भी वर्णन मिलता हैं । वहीं दूसरी ओर बौद्ध दर्शन के विशेष रूप में अभिधम्म पिटक के सात ग्रंथों में से एक मुख्य ग्रंथ धम्मसङ्गणि ग्रंथ में चित्त के विषय का वर्णन मिलता हैं और साथ में चित्त के विभिन्न हिस्सों के रूप में इसके अर्थ बताए गए हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. सांख्यकारिका,पृष्ठ,संख्या– 35 / 36
2. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याःप्रकृत्विकृतयःसप्त। षोडशकस्तुविकारोनप्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः। सां.का. 3
3. सां.का. पृष्ठ, संख्या– 24

4. अन्तःकरणंत्रिविधंदशधाबाह्यंत्रयस्यविषयाख्यम्। साम्प्रतकालंबाह्यंत्रिकालमाभ्यन्तरंकरणम्। सां.का. 33
5. सान्तःकरणाबुद्धिःसर्वविषयमवगाहतेयस्माते। तस्मात्त्रिविधंकरणंद्वारिद्वाराणिशेषाणि। सां.का. 35
6. निगद्यतेऽन्तःकरणंमनोधीरहंतिश्चियन्तमितिस्ववृत्तिभिः।
मनस्तुसंकल्पविकल्पनादिभिर्बुध्दिःपदार्थाध्यावसायधर्मतः। 95।
अन्नाभिमानादहमित्यहंकृतिः स्वार्थानुसन्धानगुणेनचित्तम् ।96। विवेक चूड़ामणिः पृष्ठ, संख्या– 100/101
7. योग शब्दकोश, पृष्ठ संख्या– 85
8. अनतंवैमनः। बृहदारण्यक उपनिषद् (3/19)
9. चित्तकाला हि यऽन्तस्तु चित्त परिच्छेद्याःनान्यश्चित्त काल व्यतितरेकेण परिच्छेदकःकालों येषां ते चित्तकालाः। मा.उ./वै.प्र–14। प्रमुख उपनिषदों के परिभाषिक शब्द अद्वैत वेदांत के संदर्भ में पृष्ठ संख्या 199
10. स्वप्रादिप्रतिबोधचेतःप्रतिद्वारी भूत्वाच्चेतोमुखःबोध लक्षण वा चेतांद्वारं मुखमस्य स्वप्राधागंमन प्रतीति चेतोमुख। मा.उ./गो.प.का. 5, वहीं, पृष्ठ संख्या– 199
11. चित्तात्मानि चित्तोत्पत्तीनि चित्ते प्रतिष्ठितानि चित्तस्थितानीत्यपि स चित्तमयः। छा.उ. 7/5/2, वहीं, पृष्ठ संख्या– 199
12. जूतिश्चेतसो रुजादिदुः खत्वाभावः। ऐ.उ.3/1/2, वहीं, पृष्ठ संख्या– 200
13. वेदांत सार, पृष्ठ संख्या– 17
14. पाण्डेय, राजकुमारी, भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण, 2008 पृष्ठ संख्या–115
15. योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः। पतंजलि योगसूत्र– 1/2

16. तदाद्रष्टुःस्वरुपेऽवस्थानम्। वहीं– 1/3
17. चित्त सत्त्वम्– सत्त्व बहुलचित्तम्, सत्त्वप्रधानं चित्तम्। चित्तरूपेण परिणतं सत्त्वं चित्त सत्त्वम्, तदेवं प्रख्यारूपतया सत्त्वप्राधान्यं चित्तस्य दर्शितम्। –तत्तववैशारदी, पृष्ठ संख्या– 13
18. क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरूद्धमिति चित्तभूमयः। योगसूत्र व्यास भाष्य– 1/1
19. स च सार्वभौमश्चित्तस्यधर्मः। व्यास भाष्य, पृष्ठ संख्या– 1 और 5
20. सर्वासु भूमिषु विदितः। सिद्धान्त–कौमुदी, खण्ड–2, पृष्ठ संख्या– 433
21. प्रमाणविपर्ययविकल्प निद्रा स्मृतयः। पतंजलि योगसूत्र– 1/6
22. वृत्तयःपञ्चतय्यःक्लिष्टाक्लिष्टः। वहीं– 1/5
23. वृत्तिसारुप्यमितरत्र। वहीं, – 1/4
24. चट्टोपाध्याय, सतीशचन्द्र एवं दत्त, धीरेन्द्र मोहन, भारतीय दर्शन, पुस्तकभंडार, पटना, संस्करण, 1994, पृष्ठ, संख्या, 137
25. अभिधर्मकोश–1/2
26. उपाध्याय भरतसिंह, पालि–साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सातवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या–475
27. तत्थ चित्तं ताव चतुब्बिधं होते, कामावचरं रूपावचरं, अरूपावचरं लोकुत्तरञ्चेति। अभिधम्मत्थसङ्गहो– 2, पृष्ठ संख्या–17
28. उपाध्याय भरतसिंह, पालि–साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सातवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या– 477–478
29. वहीं, पृष्ठ संख्या– 477